Postal Regn. - RTK/010/2020-22
RNI - HRHIN/2003/10425

ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का पाक्षिक मुखपत्र
अक्तूबर 2023 (प्रथम)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

Email : aryapsharyana@yahoo.in
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
Visit us : www.apsharyana.org

आर्य वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय पानीपत में आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा दयानन्दमठ रोहतक के यशस्वी प्रधान सेठ श्री राधाकृष्ण आर्य जी का सम्मान करते हुए आर्य वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय पानीपत के प्रधान श्री वीरेन्द्र आर्य, मैनेजर श्री रामपाल आर्य, श्री राजेन्द्र जागलान, श्री रणदीप आर्य व श्री सुरेन्द्र लठवाल आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

आर्य बाल भारती पब्लिक स्कूल जी.टी. रोड पानीपत में आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा दयानन्दमठ रोहतक के यशस्वी प्रधान सेठ श्री राधाकृष्ण आर्य एवं विद्यालय के सभी स्टाफ सदस्यगण उपस्थित थे तथा साथ में आर्य बाल भारती पब्लिक स्कूल पानीपत के प्रधान श्री रणदीप आर्य, प्रिंसिपल सत्यवान आर्य, गुरुकुल कुरुक्षेत्र के प्रधान श्री राजकुमार, श्री रामनिवास व श्री अनिल आर्य आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,124
विक्रम संवत् 2080
दयानन्दाब्द 200

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
की
मुख्य-पत्रिका

वर्ष 19 अंक 17

सम्पादक :
उमेद सिंह शर्मा

पत्रिका-शुल्क

देश में
वार्षिक-200 रुपये आजीवन-2000 रुपये

विदेश में
वार्षिक शुल्क 100 डॉलर
आजीवन 400 डॉलर

पत्रिका का स्वामित्व
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि०)
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ,
गोहाना रोड, रोहतक-124001

सह-सम्पादक
आचार्य सोमदेव

सम्पादकीय विभाग
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ, रोहतक
सम्पर्क सूत्र-
चलभाष :-
मो० 89013 87993

॥ ओ३म् ॥

आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय चिन्तन एवं वैदिक जीवन मूल्यों की पाक्षिक पत्रिका

आर्य प्रतिनिधि

अक्तूबर, 2023 (प्रथम)
1 से 15 अक्तूबर, 2023 तक

इस अंक में....

1. सम्पादकीय–वेद-प्रवचन 2
2. विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी 3
3. स्वास्थ्य चर्चा–लहसुन के अनेक लाभ 4
4. वैदिक उपनिषद् 5
5. अविद्या-विद्या एवं असम्भूति-सम्भूति 7
6. आर्यसमाज शुद्ध ज्ञान व कर्मों से युक्त मनुष्य का निर्माण करता है 10
7. क्या महाभारत में मन्त्र हैं? 12
8. महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा रचित अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की भूमिकाओं में सुधारवादी वैचारिक क्रान्ति का मूल उद्देश्य 14
9. कविता–जवानी को याद करेंगे 15
10. समाचार-प्रभाग व शेषभाग 16

आर्य प्रतिनिधि पाक्षिक पत्रिका के प्रसार में सहयोग दें

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक उलट-पलटकर रख देने लायक नहीं, बल्कि गंभीरतापूर्वक पढ़ने योग्य पत्रिका है। यदि आप इसके पाठक बनेंगे तो हमें विश्वास है कि पसन्द भी करेंगे और चाहेंगे कि इसे अन्य लोग भी पढ़ें। कृपया अपने जैसे गम्भीर पाठकों से 'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक पत्रिका की चर्चा करें, उन्हें इसका ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करके ऋषि ऋण से अनृण होवें।

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक का वार्षिक शुल्क 200/- रुपये एवं आजीवन शुल्क 2000/- रुपये है।

आप उपरोक्त राशि 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा' दयानन्दमठ रोहतक के नाम से बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा भिजवाकर सदस्य बन सकते हैं।

–सम्पादक

सम्पादकीय...

वेद-प्रवचन

❑ संकलन–उमेद शर्मा, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, दयानन्दमठ, रोहतक

वेदमन्त्र

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तव गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥
(ऋग्वेद 10.34.13)

अन्वय–हे कितव! अक्षैः मा दीव्यः। कृषिम् इत् (एव) कृषस्व। बहु मन्यमानः (सन्) वित्ते रमस्व। तत्र (तस्यां अवस्थायां) गावः (तव सन्ति)। जाया (तव अस्ति)। अयम् अर्यः सविता (प्रेरकः ईश्वरः) मे तत् (धर्म-रहस्यम्) विचष्टे (विविधम् व्याख्यातवान्)।

अर्थ–(हे कितव) हे जुआरी! (अक्षैः मा दीव्यः) पासे फेंककर जुआ मत खेल। (कृषिं इत् कृषस्व) खेती ही कर। (वित्ते रमस्व) धन का स्वामी हो जा, (बहुमन्यमानः) सत्कार पाता हुआ। (तत्र) ऐसा करने पर (गावः) गौएँ तेरी होंगी। (तत्र जाया) और उस अवस्था में तेरी स्त्री वास्तव में तेरी स्त्री होगी। (अयम् अर्यः सविता) वह प्रेरक ईश्वर (मे) मेरे लिए (तत्) उस धर्मरहस्य को (विचष्टे) भलीभांति खोलता या वर्णन करता है।

व्याख्या–इस मन्त्र में स्थूल रूप से दो उपदेश दिये हैं, पहला, '**जूआ मत खेल**', दूसरा '**केवल खेती कर**'। परन्तु सूक्ष्मरूप से विचार करने से बहुत बड़ी दार्शनिक सच्चाई का विधान प्रतीत होता है। '**जुआ**' और '**खेती**' मनुष्यों की दो परस्पर विरोधिनी धाराओं का व्याख्यान करती हैं।

सूक्ष्म अर्थों को जानने के लिए शब्दों के धात्वर्थ अर्थात् निकास पर विचार करना पड़ता है। जिस प्रकार लोहा एक ही धातु है परन्तु उससे तलवार भी बनती है, फावड़ा भी और घड़ी के पुर्जे भी, इसी प्रकार एक ही धातु से थोड़ा-थोड़ा भेद करके अनेक शब्द बन जाते हैं। संस्कृत के 'हृ' धातु के आहार, व्यवहार, संहार शब्द बन गये जिनके अर्थों में अत्यधिक भेद है। वेद में '**मा दीव्यः**' का अर्थ है–जुआ मत खेल। यहाँ 'दिवु' धातु का प्रयोग हुआ है। दिवु धातु के धातुपाठों में इतने अर्थ दिये हुए हैं–'**क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु**'। ये अर्थ इतने भिन्न-भिन्न हैं कि अध्ययन करने वाला चक्कर में पड़ जाता है कि एक ही धातु के भिन्न-भिन्न अर्थ कैसे हो गये? जुआ खेलना और स्तुति करना एक ही बात तो नहीं है। परन्तु मनुष्य का मस्तिष्क अपने व्यवहार में किस प्रकार चक्कर लगाकर कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है, इसका समझना कठिन नहीं है। जिस 'दिवु' धातु से 'दीव्यति' शब्द बनता

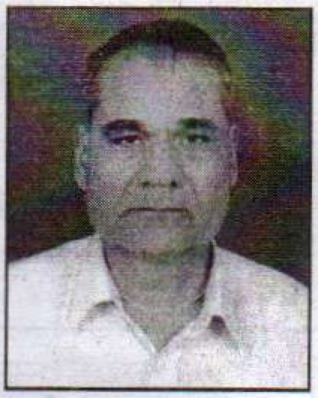

है, उसी देव, देवता, दिव्य आदि बन गये। एक ही धातु के अनेक अर्थ कैसे हो गये और कब हो गये? आरम्भ में तो एक ही अर्थ रहा होगा? सम्भव है कि 'द्युति' या 'चमकना' दिवु का मौलिक अर्थ था। चमकने वाली चीज मोदप्रद भी नहीं होगी, अतः मोद का सम्बन्ध भी उसी धातु से हो गया होगा। धीरे-धीरे जुआरी को जुए में अनायास-अचानक धन की प्राप्ति हुई तो 'दीव्यति' शब्द जुआ खेलने के अर्थ में आ गया। एक शब्द के अनेक शब्द और उनसे अनेक अर्थ हो जाना स्वाभाविक ही है। यह प्रथा केवल संस्कृत भाषा तक ही सीमित नहीं है, सभी भाषाओं में चाहे वह नवीन हो या प्राचीन यही परिपाटी दिखाई देती है। हिन्दी में एक धातु है चलना। इससे चलन, चलनी, चालाक आदि कई शब्द बनते हैं। अमुम पुरुष बद**चलन** है। मेरे घर में आटा चालने की एक **चलनी** है। अमुक लड़का बहुत बड़ा **चालाक** है। पुराना पैसा आजकल **चालू** नहीं है। यहाँ चालाक, चालू, चलन, चलनी आदि जो शब्द बने, वे अर्थों में भिन्न होते हुए भी व्युत्पत्ति में इतने भिन्न नहीं हैं। दाल को शोधने के लिए जिस स्त्री ने चलनी का प्रयोग किया उसकी क्रिया में 'चल' धातु का वही अर्थ विद्यमान था जो चालाक चोर के सफलता पूर्वक चौर्य-कर्म में। इसी प्रकार 'दिवु' धातु से 'द्यूत' शब्द भी बना और देवत्व भी। देव अर्थात् विद्वान् मनुष्य ईश्वर को अपने कर्मों के फलों का दाता समझकर उस पर आश्रय करता है। द्यूत कर्म करने वाला जुआरी अपने कर्म की उपेक्षा करके यह देखना चाहता है कि देखें ईश्वर क्या चाहता है। फल तो दोनों चाहते हैं परन्तु देव अपने कर्म के द्वारा और जुआरी बिना कर्म के। क्रमशः

विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी

❑ संकलन–कन्हैयालाल आर्य, संरक्षक–आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, रोहतक

गतांक से आगे....

प्रश्न 60. स्वर्ण, चांदी, रांगा, सीसा का मल (खोट) क्या है?

उत्तर-(1) सोने का मल (खोट=मिलाने योग्य) चांदी है।

(2) चांदी का मल (खोट=मिलाने योग्य) रांगा है।

(3) रांगे का मल (खोट=मिलाने योग्य) सीसा है।

(4) सीसे का मल उसका मैल है।

सोने में चांदी, चांदी में रांगा, रांगे में सीसा और सीसे का खोट मिलाने योग्य उसका मैल है।

प्रश्न 61. नींद को, स्त्रियों को, अग्नि को, सुरापान के व्यसन को किससे नहीं जीता जा सकता?

उत्तर-(1) नींद को नींद से नहीं जीता जा सकता।

(2) स्त्रियों को कामोपभोग से नही जीता जा सकता अर्थात् वश में नहीं किया जा सकता।

(3) अग्नि को इन्धन से वश में नहीं किया जा सकता।

(4) सुरापान के व्यसन को सुरा पीकर नहीं जीता जा सकता।

भाव यह है कि यदि कोई व्यक्ति सदा सोता रहे और कहे कि मैंने नींद पर विजय प्राप्त कर ली है तो यह मूर्खतापूर्ण बात है। कुछ लोग सोचते हैं कि स्त्रियों में वासना अधिक होती है, उन्हें यदि वश में करना है तो उनका अधिक भोग करे, परन्तु वे भ्रम में हैं स्त्रियां कामोपभोग से नहीं, अच्छे व्यवहार से वश में आती हैं। यदि अग्नि जल रही हो और उसमें तैल, घी, लकड़ी रूपी इन्धन डाल दिया जाये तो वह और भड़क उठती है। शराब न पीने से सुरापान के व्यसन को वश में किया जा सकता है। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि नींद को जागकर, अग्नि को इन्धन न डालकर, स्त्रियों को अच्छे व्यवहार से और सुरापान के व्यसन को मदिरा का प्रयोग न करने के संकल्प से वश में किया जा सकता है।

प्रश्न 62. महात्मा विदुर के अनुसार किसका जीवन सफल है?

उत्तर-(1) जिसने दान के द्वारा अपने मित्रों को वश में कर लिया है अर्थात् जीत लिया है।

(2) जिसने शत्रुओं को युद्ध में पराजित करके अपने वश में कर लिया है।

(3) जिसने उचित खान-पान आदि से स्त्रियों को वश में कर लिया है। ऐसे व्यक्ति का जीवन सफल है।

प्रश्न 63. क्या अधिक धन प्राप्त करने से ही व्यक्ति जीवित रह सकता है?

उत्तर-जिनके पास हजारों रुपये हैं, वे भी जीवित रहते हैं और जिनके पास केवल सौ रुपये हैं, वे भी जीवित रहते हैं अर्थात् जीवन निर्वाह कर लेते हैं। अतः केवल अधिक धन ही जीवित रहने का साधन नहीं है।

यहां महात्मा विदुर जी धृतराष्ट्र को यह कह रहे हैं– हे राजन्! आपके पुत्रों के पास अधिक धन है, ऐश्वर्य है, राज्य है, वे भी जीवन निर्वाह कर रहे हैं और पाण्डवों के पास कम धन है, वे भी जीवन निर्वाह कर रहे हैं। तेरे पुत्र और तू अधिक ऐश्वर्य पाकर भी दुःखी हो और पाण्डव कम धन पाकर भी आनन्द में हैं। अधिक धन प्राप्त करने से किसी को वश में नहीं किया जा सकता। इसलिए हे धृतराष्ट्र! अधिक पाने की इच्छा का त्याग करो, इसी में आपका कल्याण है।

प्रश्न 64. पृथ्वी पर जो सम्पत्ति है, क्या वह एक व्यक्ति के भोगने से समाप्त हो जाती है?

उत्तर-इस पृथ्वी पर जो धन, जौ, सोना, पशु, स्त्रियां हैं, वे सब पाने की इच्छा करने वाले एक ही व्यक्ति के भोगने से समाप्त नहीं हो जाती। जो व्यक्ति ऐसा देखता-मानता है और इस प्रकार जो विचार करने वाला है वह पुरुष इसके मोहपाश में नहीं फँसता।

क्रमशः अगले अंक में...

स्वास्थ्य-चर्चा

लहसुन के अनेक लाभ

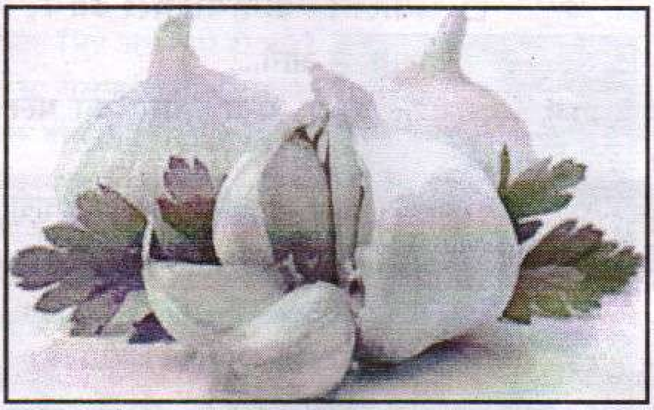

औषधीय नाम और गुण

संस्कृत-लशुन, महाकंद, अरिष्ट रसोनक, म्लेच्छकंद, महौषध, दीर्घपत्र, उग्रगंध, राहूच्छिष्ट इत्यादि। **हिन्दी**-लहसुन, लसन। **गुजराती**-लसन। **बंगला**-लशन, रसून। **बंबई**-लसून। **मराठी**-लसून। **तामिल**-बेलाई पुंड। **तेलगू**-तेल्लगडडू। **उर्दू**-लहसुन। **अरबी**-सौम, तौम। **फारसी**-सीर। **इंगलिश**-गार्लिक। **लेटिन**-एलियम सेटिरियम।

वर्णन-लहसुन एक मशहूर वस्तु है जो हिन्दुस्तान में साग तरकारी के साथ मसाले के रूप में खाने के काम में ली जाती है। इसकी खेती सारे भारतवर्ष में की जाती है। इसका पौधा प्याज के पौधे की तरह होता है। इसकी गठान प्याज के गठान की तरह ही जमीन के अन्दर लगती है।

गुण-दोष और प्रभाव-आयुर्वेदिक मत के अनुसार लहसुन पांच रसों से युक्त होता है। सिर्फ अम्ल रस इसमें नहीं पाया जाता। इसकी जड़ में चरपरा रस, पत्तों में कड़वा रस, नाल में कसैला रस, नाल के अगले भाग में लवण रस और बीजों में मधुर रस रहता है।

लहसुन पौष्टिक, कामोद्दीपक, स्निग्ध, उष्ण, पाचक, सारक, रस और पाक में चरपरा, तीक्ष्ण, मधुर, टूटी हड्डी को जोड़ने वाला, कंठ को सुधारने वाला, भारी, रक्तपित्त वर्धक, बलकारक, कान्तिवर्धक, मस्तिष्क को शान्ति देने वाला, नेत्र को हितकारी और रसायन होता है। यह हृदय रोग, जीर्ण ज्वर, कुक्षिशूल, कब्जियत, वायुगोला, अरुचि, खाँसी, सूजन, बवासीर, कोढ़, मन्दाग्नि, कृमि, वात, श्वास और कफ को हटाता है।

लहसुन शरीर की सब प्रकार की वात की पीड़ा को हरता है। यह भारी है और अरुचि को दूर करने वाला, खांसी को हराने वाला, ज्वर को नष्ट करने वाला तथा कफ, गुल्म तथा श्वास को नष्ट करने वाला, केशों को हितकारी, कृमिनाशक और प्रमेह, बवासीर, कुष्ठ और सूजन को कम करने वाला, गरम, टूटी हुई हड्डी को जोड़ने वाला, रक्तपित्त को कुपित करने वाला, शूल को शान्त करने वाला और बुढापे की व्याधियों को दूर करने वाला होता है।

यूनानी मत से इसका कन्द चरपरा, मूत्रल, पेट के अफारे को दूर करने वाला और कामोद्दीपक होता है। यह सूजन, पक्षाघात, जोड़ों का दर्द, तिल्ली, यकृत और फेफड़े के रोगों को लाभ पहुँचाता है। यह स्वर को शुद्ध करता है और जीर्णज्वर, कटिवात, प्यास, दांतों की सड़न और घायल रोग में लाभ पहुँचाता है और रक्त को पतला करता है।

लहसुन गरम, लघुदीपन, वायुनाशक, कृमिनाशक, उत्तेजक, कफनाशक, मूत्रल, वातनाशक और कामोद्दीपक होता है। इसके अन्दर रहने वाला उड़नशील तेल त्वचा, मूत्रपिंड और फुफ्फुस के द्वारा बाहर निकलता है। इसको लेने से श्वास नलिका के अन्दर कफ ढीला होता है और बाहर निकल जाता है। इससे कफ की दुर्गन्ध कम होती है और कफ के अन्दर रहने वाले रोग तंतुओं का नाश होता है। मज्जातन्तुओं के ऊपर लहसुन की जोरदार उत्तेजक क्रिया होती है। बड़ी मात्रा में लहसुन को देने से उलटी और दस्त होते हैं।

लहसुन और वातरोग-सब प्रकार के वातविकारों में लहसुन का अन्तरंग और बहिरंग दोनों से उपयोग होता है। गृध्रसी, अर्दित पक्षाघात, उरुस्तम्भ इत्यादि रोगों में लहसुन और वायविडंग के समान भाग लेकर आधे दूध और आधे पानी में औटाते हैं। जब पानी का आधा भाग जलकर दूध मात्र रह जाता है, तब इस दूध को छानकर पिलाते हैं। इस काढ़े से मज्जा तन्तुओं की शक्ति सुरक्षित रहती है और स्नायुओं की शक्ति बढ़ती है। सब प्रकार के वातरोगों में यह प्रयोग बहुत लाभ पहुँचाता है। क्रमशः अगले अंक में...

वैदिक-उपनिषद्

❑ इन्द्रसिंह पूर्व न्यायाधीश, C/o-29 नई अनाजमण्डी, भिवानी मो० 9416057813

उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ पास बैठना या निकट बैठना होता है। किसका किसके पास बैठना? शिष्य का गुरु के पास बैठना। क्यों? क्योंकि गुरु के बिना ज्ञान नहीं और ज्ञान के बिना जीवात्मा का कल्याण नहीं। उपनिषद् के अर्थ के सदृश ही उपासना तथा उपवास का अर्थ भी बनता है। अर्थात् इन शब्दों का अर्थ भी यही बनता है। निकट या पास बैठना या पास में वास करना, निकट रहना। कोई कहे कि उपासना का सम्बन्ध तो ईश्वर से है। तो भी 'बात वही' आ जाती है। ईश्वर तो गुरुओं का गुरु है, आचार्यों का आचार्य है। किसी ने किसी से पूछा कि तुम्हारा गुरु कौन है? उसने उत्तर में अपने गुरु का नाम बता दिया। फिर पूछा आपके गुरु का गुरु कौन है? वह भी बता दिया। यदि पूछने वाला पूछता ही चला जावे, तो बात कहाँ तक जाएगी? मनुष्यों के पास तो ज्ञान था नहीं। फिर ज्ञान आया कहाँ से? जो सबसे प्रथम था, उससे आया। ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे.....(वेद)। वह कौन था? वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सृष्टिकर्त्ता था। न उसके समान और न उससे बड़ा कोई था। अनादि काल से चला आ रहा ईश्वर ही था, है और रहेगा। महर्षि स्वामी दयानन्द कहते हैं कि जब उस सृष्टिकर्त्ता ने आँख आदि पदार्थों के लिए सूर्यादि पदार्थ दिए हैं, तो यह तो नहीं हो सकता कि उसने मन, बुद्धि और आत्मा के लिए कोई ज्ञान नहीं दिया होगा। फिर विचार करें कि वह कौन-सा ज्ञान दिया। संक्षेप में-संसार के पुस्तकालय का पहला पुस्तक-वेद। अर्थात् वेद के रूप में ज्ञान। अन्यथा मनुष्य सृष्टि के पदार्थों का उपयोग कैसे कर पाता और जीवात्मा का कल्याण कैसे होता?

हम विचार करें, शब्दों के अर्थ कैसे विकृत हो गए। उपवास का अर्थ हो गया अनशन, भूखे मरना। उपवास का अर्थ होता है-पास में वास करना-इतने निकट हो जाना गुरु के। हाँ, कभी-कभी यह होगा कि गुरु की निकटता में ऐसा पेट भर जायेगा कि शायद भूख की याद भी न आए। गुरु के आनन्द में डूबकर अगर भोजन की याद न आए, तो उपवास; और जबरदस्ती भोजन न किया जाए तो अनशन। अनशन हिंसा है, उपवास प्रेम है। उनमें जमीन-आसमान का भेद है। इसी कारण उपवास के अर्थ की विकृति पैदा हुई। एक आचार्य ने बताया कि वह जब भी कभी एक धर्मनिष्ठ परिवार में अतिथि होता था, तो उसके कारण न मालूम कितने अन्य मेहमान दिनभर उसके घर आते। तब गृहिणी बड़े प्रेम से उन सबको खिलाती और स्वयं कुछ खाती-पीती दिखाई नहीं पड़ती। तो उससे जब इस बारे में पूछा गया, तो कहने लगी जब आप और अन्य अतिथि यहाँ होते हैं तो मुझे भूख ही नहीं लगती। मैं खुद चकित हूँ कि भूख कहाँ खो जाती है। मैं इतनी भरी-भरी सी हो जाती हूँ कि भीतर जगह ही नहीं रहती। प्रेम भोजन से भी बड़ा भोजन है और जरूर भरता है, बहुत भर देता है। शायद भोजन की याद भी न आए। इस कारण एक गलत अर्थ हो गया उपवास का-अनशन।

उप-निषद्-पास बैठना, बस इतना ही अर्थ है, उपनिषद् का। गुरु के पास मौन होकर बैठना। जिसने जाना है, उसके पास शून्य होकर बैठना और उस बैठने में ही हृदय से हृदय आन्दोलित हो जाते हैं। उस बैठने में ही सत्संग फल जाता है। जो नहीं कहा जा सकता, वह कहा जाता है। जो नहीं सुना जा सकता, वह सुना जाता है। हृदय की वीणा बज उठती है। जिसने जाना है, उसकी वीणा बज रही है। जिसने नहीं जाना है, वह अगर पास सरक आये और पात्र हो, तो उसके तारों में भी टंकार हो जाती है। संगीतज्ञों का यह अनुभव है, अगर एक ही कमरे में-सिर्फ दो वीणाएँ रखी जाएँ, द्वार दरवाजे बन्द हों और एक वीणा पर वीणावादक तार छेड़ दे, संगीत उठा दे, तो दूसरी वीणा जो कोने में रखी है, जिसको उसने छुआ भी नहीं, उस वीणा के तार भी झंकृत होने लगते हैं। एक वीणा बजती है, तो हवाओं में आन्दोलन हो जाता है। वह स्पंदन जिस वीणा को छुआ भी नहीं है, उसके भीतर भी सोए संगीत में हलचल मचा देता है। उसके भीतर भी जैसे नींद से जाग जाते हैं, जैसे सुबह हो गई। दूर क्यों जाते हो-महर्षि स्वामी दयानन्द के जीवन के अन्तिम दिन अजमेर के भिनाय के कोठी में, उनके निकट उपस्थित वह व्यक्ति जो विज्ञान का विद्यार्थी होने के कारण अपने घर से कट्टर नास्तिक के रूप में जाता है और

फिर उस कक्ष की खिड़की से, जब उसकी स्वामी जी की आँखों से आँख मिलती है, तत्पश्चात् वहाँ उपस्थित आर्यजगत् का अथाह जनसमूह बतौर गवाह जानता है कि वही व्यक्ति किस प्रकार कट्टर आस्तिक बनकर, अपने शरीर पर पहनी हुई अल्फी के दोनों ओर आर्यसमाज के पाँच-पाँच (दस) नियम अंकित करवाये हुए दीवाना होकर अपने घर लौटता है और घरवाली पूछती है कि आपने यह क्या हुलिया बनाया है? स्वामी जी ने उस जिज्ञासु महानुभाव पं० गुरुदत्त विद्यार्थी को उस घड़ी में अपनी वाणी से कोई उपदेश नहीं दिया था। ऐसा कोई हवाला नहीं मिलता है। वाह रे ऋषि! जाते-जाते भी तूने सबको चमत्कृत कर दिया।

उपरोक्त की पुष्टि में प्रकरणवित होने के कारण निवेदन है कि आज से लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व एक वैज्ञानिक ने पहली बार इस सिद्धान्त को खोजा। वह इसे कोई नाम नहीं दे सका। फिर अभी कोई 65-70 साल पहले कार्ल गुस्ताव जुंग नाम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने इसे नाम दिया- 'सिंक्रॉनिसिटी' (Synchrony City)। जिस वैज्ञानिक ने पहली दफा यह खोज की थी, वह एक पुराने किले में मेहमान था, एक राजा के घर अतिथि था। और जिस कमरे में वह था, दो घड़ियां उस कमरे में एक ही दीवार पर लटकी हुई थी। पुराने ढ़ब की घड़ियाँ। मगर वह हैरान हुआ यह बात जानकर कि उनका पेण्डुलम् एक साथ घूमता है मिनिट और सैकेण्ड भी भिन्न नहीं। सैकेंड-सैकेंड वे एक साथ चलती। इन दो घड़ियों के बीच उसे कुछ ऐसा तालमेल दिखाई पड़ा-वैज्ञानिक था, सोच में पड़ गया कि इस तरह की दो घड़ियाँ उसने कभी देखी नहीं, जिनमें कि सैकेंड का भी फर्क न हो। तो उसने एक काम किया कि वह संयोग तो हो सकता है, उसने एक घड़ी बन्द कर दी रात को। दूसरे दिन सुबह शुरू की और दोनों के बीच कोई तीन-चार मिनट का फासला रखा। चौबीस घण्टे पूरे होते-होते दोनों घड़ियाँ फिर साथ-साथ डोल रही थी। बराबर सैकेंड-सैकेंड करीब आ गये थे, पेण्डुलम् फिर साथ-साथ लयबद्ध हो गए थे। तब तो वह चमत्कृत हो गया। राज क्या है? आया था दिन दो दिन के लिए, लेकिन सप्ताहों रुका, जब तक राज न खोज लिया। राज यह था कि वे जिस दीवार पर लटकी थी, उस पर कान लगा-लगाकर सुनता रहा कि क्या हो रहा है, तब उसे समझ में आया कि एक घड़ी की टिक-टिक, जो बड़ी घड़ी थी, उसकी टिक-टिक दीवार के द्वारा दूसरी घड़ी में पेण्डुलम् को भी संचालित कर रही है, उसमें एक लयबद्धता पैदा कर रही है और बड़ी घड़ी इतनी बलशाली है कि छोटी घड़ी करे भी तो क्या करे, वह छोटी घड़ी सहज ही उसके साथ लयबद्ध हो जाती है। उसने इसको सिर्फ लयबद्धता कहा था। लेकिन जुंग ने इसे पूरा वैज्ञानिक आधार दिया और इसे 'सिंक्रॉनिसिटी' कहा और सिर्फ घड़ियों के लिए नहीं, बल्कि जीवन के समस्त आयामों में इस लयबद्धता के सिद्धान्त को स्वीकार किया।

रहस्यवादी तो इस सिद्धान्त से हजारों वर्षों से परिचित हैं। सत्संग का यही राज है, 'सिंक्रॉनिसिटी'। सद्‌गुरु यूँ समझो कि बड़ी घड़ी, कि बड़ा सितार। और शिष्य यदि राजी हो, श्रद्धा से भरा हो और बड़े सितार के पास सिर्फ बैठा रहे-कुछ न करे, तो भी उसके तार झंकृत हो जायेंगे। उपनिषद् का अर्थ है-'लयबद्धता'। इस लयबद्धता का आधार क्या है या कहें कि इसका स्रोत क्या है? परस्पर जुड़ाव का साधन क्या है? इसे कोई वैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक नहीं बता पाया है। इसे तो कोई योगसाधक ही बता सकता है। तो ऐसे योगी से पता चलेगा कि इसका आधार तो वही निराकार सूक्ष्मतम चेतन ऊर्जा है, जो कि सृष्टि के कण-कण में सर्वव्यापक है। वह चेतन ऊर्जा (ईश्वर) अपने सामर्थ्य से प्रत्येक पदार्थ में सुनियोजित व सुव्यवस्थित तारतम्य बनाकर नियन्त्रित किए हुए है।

इसी प्रकार उपासना का अर्थ है-पास बैठना। का भी गलत अर्थ हो गया। अब तुम मूर्ति की आराधना कर रहे हो, थाली सजाई हुई है, आरती बनाई हुई है, दीए जलाए हुए हैं, धूप जलाई हुई है और इसको तुम उपासना कह रहे हो। यह तो मात्र अंधविश्वास, आडम्बर, दिखावा और पाखण्ड के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। फिर उपासना क्या है? उपासना तो सद्‌गुरु के पास बैठना होता है अथवा प्रत्याहार करते हुए गुरुओं के गुरु परमेश्वर के ध्यान में बैठना होता है। अर्थात् विधिपूर्वक योगाभ्यास करना होता है। यही आरती है, आराधना है। गुरु के पास बैठना ही, तुम्हारें भीतर के दीए का जलना है। उसके पास बैठते ही, तुम्हारे भीतर धूप जल उठती है, सुगन्ध उठने लगती है। ऐसे ही उपवास का अर्थ भी समझ लिया जावे। क्रमशः

अविद्या-विद्या एवं असम्भूति-सम्भूति

❑ महात्मा वेदपाल आर्य

मनुष्य जीवन का मुख्य और अन्तिम उद्देश्य/लक्ष्य है- दु:खों से छूटना और सुखों को प्राप्त करना अर्थात् मोक्ष (मुक्ति, अपवर्ग) को प्राप्त करना। मोक्ष प्राप्त करने के लिए ऋषि-महर्षियों ने उपनिषदों की रचना की हैं। इनमें 11 (ग्यारह) को ही वेद के आधार पर प्रामाणिक माना गया है। इन सभी में अपने-अपने अनुभवों के आधार से मोक्ष को प्राप्त करने के विधि-विधान किये हैं, जिनका वैदिक वाङ्मय में विशेष महत्त्व है। इनमें वेद के गहन अर्थों (भावों) को जनसामान्य को सरल विधि से समझाया गया है। ईशोपनिषद् इनमें अपना विशेष स्थान रखती है।

इसमें मनुष्य (साधक, उपासक) को ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि के वास्तविक गुण, कर्म, स्वभाव एवं वास्तविक स्वरूप के प्रति सजग करते हुए इनके प्रति प्रत्येक क्षण जागरूक बने रहने का उपदेश है। मुक्ति मार्ग का पथिक बनने हेतु जीवात्मा को अपने गुण, कर्म, स्वभाव-ईश्वर के सदृश बनाने होंगे और इन्हें व्यावहारिक परिधान भी पहनाना होगा। इन गुणों को प्राप्त करने के लिए साधक को अष्टांग-योग (सन्ध्या, उपासना, भक्ति, योगाभ्यास) का पदे-पदे कठोरता से पालन एवं व्यावहारिक जीवन में लाना अति आवश्यक है।

परन्तु इन गुण, कर्म, स्वभाव को जान लेने, समझ लेने पर भी अविद्या-विद्या, असम्भूति-सम्भूति को भी पूर्णरूपेण जाने, समझे बिना और इन चारों की पृथक्-पृथक् प्रयोग विधि को जाने बिना साधक अटकता, भटकता ही रहता है- विवेक के अभाव में। उपासक हठ करके आगे साधना में बढ़ने का प्रयास करता रहता है, परन्तु वह गिरता, फिसलता रहने से आगे नहीं बढ़ पाता है। साधना में पूर्ण पुरुषार्थ से जो लाभ मिलना होता है, उससे वह वंचित रह जाता है। वास्तविक साधना मार्ग उसे हाथ नहीं आता है। अपनी साधना प्राप्ति के भ्रम में घूमता-फिरता रहता है और कुछ काल बाद इस मार्ग से उखड़ भी जाता है। उसे सब कुछ नीरस ही लगने लगता है। हाथ-पैर मारने पर भी उस स्थिति को प्राप्त नहीं कर पा रहा है, क्योंकि वह अविद्या-विद्या एवं असम्भूति-सम्भूति का बोध पूरी तरह से नहीं कर पा रहा है।

इस विवेचन से तो यही अभिप्राय हुआ कि मुक्ति पथ का पथिक बनने के लिए पहले साधक को साधना का स्वयं को अधिकारी बनाना ही होगा। इस हेतु ईश्वर, जीव, प्रकृति के वास्तविक स्वरूप को विवेक स्तर (तत्त्वज्ञान) पर अच्छी प्रकार से जाने-समझे और व्यवहार रूप में लाने के साथ-साथ अविद्या-विद्या एवं असम्भूति-सम्भूति इन चारों ग्रन्थियों को समझकर इन्हें खोलने और क्रियारूप के लिए पूर्ण प्रयास विवेक सहित अति आपेक्षित है। ऐसा करने पर उपासक निश्चित रूप से अपने मार्ग/उद्देश्य पर आगे ही आगे बढ़ता जाएगा, न वह अटकेगा, न फिसलेगा, न लुढकेगा, न रुकेगा- गतिमान ही रहेगा। बाधाएं इस मार्ग से रोक नहीं पाएगी और वह एक दिन चन्द्रयान की यात्रा करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त भी कर लेगा।

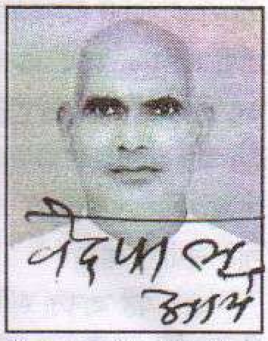

अविद्या-विद्या के विषय में उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, दयानन्दमठ रोहतक (हरयाणा) की पाक्षिक पत्रिका 'आर्य प्रतिनिधि' में 7 अप्रैल 2013 में एक लघु लेख देने पर प्रकाशित हुआ था। पाठकों द्वारा इसे प्रशंसनीय मानने के कारण कईयों द्वारा शेष दो ग्रन्थियों 'असम्भूति-सम्भूति' के विषय में लिखने हेतु आग्रह किया गया। समय न मिलने के कारण इसे लिखने में असमर्थ रहा। अब इतने वर्षों के बाद अवसर हाथ आया कि शरीर में हार्निया की शैल्य-चिकित्सा हुई तो कम से कम छह मास तक घूमना-फिरना, कार्य करना आदि माननीय चिकित्सक महोदय ने प्रतिबन्धित कर दिया। इस आदेशानुसार मार्च, 2023 में विश्राम अवस्था में पाठकगण की पवित्र प्रेरणा से इन शेष दो ग्रन्थियों के विषय में कुछ पढ़ा है, सुना है, उसी के आधार पर यह लघु लेख आदणीय पाठकगण की सेवा में प्रस्तुत है। इसमें जो सिद्धान्तानुसार है वह मेरा नहीं है, वह गुरुओं, विद्वानों का है और जो इसमें सिद्धान्त विपरीत है वह मेरे द्वारा है-त्रुटि, भूल के कारण-इस हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ। कृपया पाठकगण त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाने का कष्ट कीजिएगा-आभारी व धन्यवादी रहूँगा।

अब शेष दो ग्रन्थियों के विषय में कुछ विवेचन करते हैं जिनका होना 'योग' हेतु आवश्यक है। ईशोपनिषद् के ऋषि उपासक को समझाते हुए उपदेश कर रहे हैं कि जो साधक कारणरूप जगत् (असम्भूति) और कार्यरूप जगत् (सम्भूति) दोनों को एक साथ जानता है, व्यवहार रूप में लाता है, तो वह योगमार्ग में प्रवृत्त होकर मुक्ति के राह का राही बन जाता है। यदि वह इनमें से एक ही की उपासना में तल्लीन रहेगा तो कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाएगा। बहुत गहरे अंधकार में गोते लगाता रहेगा।

अब यह जानना समझना है कि आखिर ये दोनों ग्रन्थियाँ हैं क्या? क्या दोनों का प्रयोग साथ-साथ अपेक्षित है? इन प्रश्नों का उत्तर उपर्युक्त विवरण में कुछ आ चुका है। अब इन दोनों को विस्तार से अलग-अलग जानने-समझने का प्रयास करते हैं।

असम्भूति-प्रकृति की उस अवस्था का नाम है, जो अभी कारण रूप में ही है अर्थात् कार्य रूप में परिवर्तित नहीं हुई है। कार्यरूप प्रकृति (संसार, जगत्, सृष्टि) का विनाश, नष्ट होना **असम्भूति** कहलाती है।

सम्भूति-प्रकृति की उस अवस्था का नाम है, कार्यरूप में (संसार, जगत्, सृष्टि) परिवर्तित (बदल) हो चुकी है। इसे विकृति (संसार) भी कहते हैं। कार्यरूप प्रकृति (संसार, जगत्, सृष्टि) का विनाश, नष्ट न होना मानना ही **सम्भूति** है।

उपर्युक्त दोनों परिमाणों की तुलना होने पर एक तो यह संज्ञान में आया कि प्रकृति कारणरूप से कार्यरूप में परिवर्तित होने पर भी उसे विनाश, नष्ट होना मानकर उपासक वस्तुओं, स्थानों, सम्बन्धों आदि से अपना व्यवहार चलाना चाहता है, चला रहा है-अज्ञान के कारण। ऐसा व्यवहार असम्भूति कहलाता है। वह मान बैठा है कि जो भी वर्तमान में है, सब कुछ कारण रूप प्रकृति (विनाश) ही है। इनका प्रयोग किसलिए करें? नष्ट तो होना ही है, नष्ट होने वाले पदार्थ ने भी तो एक दिन नष्ट होना है।

दूसरे संज्ञान में आया कि उपासक कार्य रूप प्रकृति (संसार, जगत्, सृष्टि) को कारण रूप प्रकृति (विनाश, नष्ट) मान ही नहीं रहा है। जबकि संसार का बनाना ही प्रकृति का बिगड़ना (विनाश होना) है। वह अपना व्यवहार, कार्य सदैव रहने वाले पदार्थों, स्थानों, वस्तुओं, सम्बन्धों का होना मानकर रहा है और स्वयं को भी सदैव रहने वाला मान रहा है, विवेक अभाव में। ऐसा व्यवहार सम्भूति है। वह यह धारणा बना चुका है कि वर्तमान में जो है, सब कुछ कार्य रूप प्रकृति (विनाश न होना, सदैव रहना) ही है। इन सभी का प्रयोग क्यों न करें? ये सभी सदा रहने वाले हैं। जबकि ये सभी विनाश होने से बने हैं, परन्तु साधक इन्हें अपने कार्य, व्यवहार में विनाश होने वाला मान ही नहीं रहा है। यह संसार तो सदैव रहने वाला माने बैठा है।

दोनों में और भिन्नता समझने का प्रयास करते हैं। असम्भूति में तो साधक संसार का विनाश मान रहा है। वर्तमान की सभी वस्तुओं आदि का विनाश होना निश्चित हैं, ऐसी मान्यता बनाकर संसार की वस्तुओं से व्यवहार, कार्य कर रहा है।

सम्भूति में उपासक संसार को विनाश वाला मान ही नहीं रहा है। ऐसी धारणा अपनी बनाकर संसार में वस्तुओं, स्थानों, पदार्थों, सम्बन्धों आदि से व्यवहार कर रहा है। सभी को सदैव रहने वाला मान रहा है।

जब साधक इन दोनों में से किसी एक की ही उपासना में तल्लीन रहेगा तो वह मोक्ष मार्ग का पथिक बन ही नहीं सकेगा। यदि इस पथ का पथिक बनना है तो साधक को दोनों की ही उपासना करनी होगी। सन्तुलन बनाकर, जिसकी जितनी आवश्यकता है। एक की उपासना से लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता। यह वह केवल असम्भूति में ही रहता है तो गहरे गड्ढे में अन्धकार में चला जाता है और जो केवल सम्भूति में ही लिप्त है, वह तो और भी गहरे कुएं के अन्धकार में जाता है।

जब उपासक इन दोनों अवस्थाओं का अवलोकन करता है तो एक तरफ गहरा गड्ढा है और दूसरी ओर बहुत गहरा कुआं है, तो घबरा जाता है। तीसरा विकल्प चाहता है। यह है ही नहीं। अर्थात् वह दोनों स्थितियों में अपनी मृत्यु ही मान रहा है विवेक के अभाव में।

ऐसी स्थिति में ये दोनों अवस्थाएं उपासक के लिए त्याज्य हुई। उपासना के योग्य नहीं रही। जब साधक ऐसी स्थिति बना लेता है तो उपनिषद् के ऋषि उसे उपदेश देते हैं। साधक! घबरा मत, धैर्य, विवेक से कार्य कर, यदि मोक्ष का पथिक बनना है तो असम्भूति और सम्भूति दोनों को ही अपने जीवन, व्यवहार में लाना ही होगा। अन्य और कोई विकल्प है ही नहीं।

उपासक जब असम्भूति में रहता है तो वर्तमान संसार (कार्यरूप) में वस्तुएं, पदार्थों, स्थानों, सम्बन्धों आदि को उनके कारण रूप (विनाश) में देखता रहता है। उनसे बाहर निकलता ही नहीं। इनसे बाहर निकले बिना वह अपना कार्य, व्यवहार चला नहीं सकता, क्योंकि उसे रहना तो संसार में है और संसार की वस्तुओं आदि को वह नाशवान मानकर प्रयोग नहीं कर रहा है। स्वयं को भी नाशवान मान रहा है। जैसे एक व्यक्ति ने उसे केले, सेब, बादाम, काजू आदि दिए कि खाओ और शरीर को हृष्टपुष्ट बनाओ-इसी से सभी कार्य सिद्ध होने हैं। वह असम्भूति वाला व्यक्ति कहता है कि क्या करना है खा-पीकर। यह शरीर भी मिट्टी का बना है, ये पदार्थ भी मिट्टी के बने हैं। सभी को एक दिन मिट्टी में मिल जाना ही है। कोई आवश्यकता नहीं इसके उपयोग की। अर्थात् वह हर पदार्थ आदि में विनाश ही देखता है, इसलिए इस अवस्था को असम्भूति कहते हैं, विनाश कहते हैं, क्योंकि सभी अपने मूल कारणों से विलीन हो ही जाता है। जो व्यक्ति ऐसा सोचता है, विचारता है, सदा निराश ही रहता है। जीवन में उत्साह-उमंग नहीं रहती है। मित्र से मिलना भी वह अन्त में बिछुड़ना ही मानता है। ऐसा व्यक्ति घोर अन्धकार में डुबकी लगाता रहता है। वह व्यक्ति स्थान, वस्तु, अपने शरीर आदि को वर्तमान में न देखकर सभी को उनके कारणरूप में विलीन (नष्ट) वाला मानकर इनसे यथोचित लाभ उठा नहीं सकता है। यह व्यक्ति असम्भूति उपासना वाला कहलायेगा।

जब व्यक्ति (साधक) सम्भूति में रत रहता है, अर्थात् जब वह विकृति रूप प्रकृति (संसार, सृष्टि, जगत्) के भोगों में ही डूबा रहता है और धारणा बना लेता है कि मैं सदा यहाँ बना ही रहूँगा और भोग के सभी पदार्थ भी अपनी अवस्था में ही बने रहेंगे तथा पत्नी, बच्चे, सगे-सम्बन्धी, मित्रगण, कार, कोठी, बंगले आदि सभी बने रहेंगे-इनका विनाश होना ही नहीं है-ऐसी धारणा व व्यवहार करने वाला सम्भूति वाला व्यक्ति है। वह संसार के ही भोगों में लिप्त रहता है। इनसे बाहर निकलना ही नहीं है। इनकी नश्वरता को भुलाकर सदा रहने वाला मान रहा है। इस प्रकार का उपासक तो और भी बहुत गहरे कुएं के अन्धकार में चला जाता है।

उपनिषद् के ऋषि हमें सावधान करते हुए उपदेश के माध्यम से समझा रहे हैं कि इन दोनों का साथ-साथ प्रयोग करना ही फलप्राप्ति का हेतु बनता है और दोनों के पृथक्-पृथक् ही फल हैं। इन दोनों फलों की मोक्षमार्ग में अति आवश्यकता है। यदि हम विवेक से इन ग्रन्थियों को जान लें, समझ लें और साथ-साथ व्यवहार, आचरण में उतार लें, तो असम्भूति=अभ्युदय और सम्भूति=निःश्रेयस्, दोनों को प्राप्त कर सकते हैं। दोनों आपस में एक दूसरे के पूरक हैं।

यदि शरीर हृष्ट-पुष्ट, नीरोग, सामर्थवान् नहीं है तो व्यक्ति योगाभ्यास कर ही नहीं पाएगा। इसलिए असम्भूति का भोग यथायोग्य (प्रयोग) आपेक्षित है और जब तक भोगों से वैराग्य नहीं कर पाएगा तो भी योगाभ्यास केवल स्वप्नमात्र ही बना रहेगा। इसलिए सम्भूति का भी यथायोग्य प्रयोग (उपभोग) आपेक्षित है। अनित्य (नाशवान) और नित्य (नाशवान न होना) पदार्थों आदि को जानकर, समझकर विवेक से साधक असम्भूति=सम्भूति के साथ-साथ यथायोग्य प्रयोग (उपयोग, व्यवहार) से अपने लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकेगा वरना नहीं। नहीं तो धूल में लठ ही घुमाता रहेगा। गहरे गड्ढे या बहुत गहरे कुएं के अन्धकार में पड़ा रहेगा।

अतः साधक अविद्या-विद्या एवं असम्भूति-सम्भूति, इन चारों ग्रन्थियों को अपने आचरण, व्यवहार में लाकर ही मोक्ष लक्ष्य प्राप्त कर सकेगा, यही उषनिषद् का ऋषि हमें उपदेश कर रहा है। यह अब हम पर निर्भर है कि मोक्ष की सच्ची चाह, सच्ची भूख है या मोक्ष की झूठी चाह, झूठी भूख है।

मोक्ष प्राप्ति मार्ग हेतु मनुष्य का प्रथम मुख्य कर्त्तव्य पालन ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना है। इसे करने हेतु जीवात्मा को अपने गुण, कर्म, स्वभाव को ईश्वर के सदृश बनाने होंगे। इन गुणों आदि को प्राप्त करने के लिए सन्ध्या, उपासना, योगाभ्यास (अष्टांगयोग) से पूर्व अविद्या-विद्या एवं असम्भूति-सम्भूति का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना होगा और अपने जीवन में व्यवहार, आचरण का अंग बनाना ही होगा तब हम इस मोक्ष मार्ग पर चल सकेंगे, बढ़ सकेंगे, प्राप्त कर सकेंगे और अन्य मार्ग है ही नहीं। ध्यान दें समय बहुत तेजी से गतिमान है। यह जीवन (मानव जीवन) ईश्वर ने मोक्ष प्राप्ति हेतु ही दिया है। यह वाक्य अपने चिन्तन का विषय रहना चाहिए ताकि हम मार्ग को इस जीवन का अंग बनाएं।

संपर्क-कुटिया नं० 206, मुख्य शाखा, आर्य विरक्त (वानप्रस्थ+संन्यास) आश्रम ज्वालापुर, हरिद्वार मो० 9773571289

आर्यसमाज शुद्ध ज्ञान व कर्मों से युक्त मनुष्य का निर्माण करता है

❑ मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून-248001, मो० 9412985121

देश और समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि सभी मनुष्यों की बुद्धि व शरीर के बल का पूर्ण विकास कर उन्हें शुद्ध ज्ञान व शक्ति सम्पन्न मनुष्य बनाया जाये। ऐसे व्यक्ति ही देश व समाज के लिये उत्तम, चरित्रवान्, देशभक्त तथा परोपकार की भावना से युक्त होते हैं व देश व समाज के लिए लाभदायक होते हैं। आर्यसमाज से इतर कोई संगठन यह कार्य करता हुआ दीखता नहीं है। सृष्टि के आरम्भ काल से ही यह कार्य वेद व वैदिक जीवन पद्धति के द्वारा होता आया है। महाभारत युद्ध के बाद वेदों के विलुप्त हो जाने के बाद से यह कार्य होना अवरुद्ध हो गया था। महाभारत युद्ध के कई शताब्दियों बाद देश व विश्व में जो मनुष्य उत्पन्न हुए वह शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से हीन प्रतीत होते हैं। यदि वह शुद्ध ज्ञान से युक्त होते तो संसार में अविद्या, अज्ञान, अन्धविश्वास, पाखण्ड, कुरीतियां आदि प्रचलित नहीं हुई होती। इसके साथ ही कहीं कोई अविद्यायुक्त मत-मतान्तर, पन्थ, सम्प्रदाय स्थापित व प्रचलित न होता। इसके विपरीत शुद्ध ज्ञान-विज्ञान पर आधारित एक ही मत, पन्थ व संगठन विश्व में होता जैसा कि सृष्टि के आरम्भ से महाभारत युद्ध तक पूरे विश्व में वैदिक धर्म का संगठन था जिसें संसार के सभी लोग मानते थे और वेदों के अनुयायी ऋषि मुनि इस वैदिक धर्म का देश देशान्तर में प्रचार करते हुए उच्च चारित्रिक नियमों का पालन करते कराते हुए समाज को सभी प्रकार के अज्ञान व पाखण्डों से मुक्त रखते थे।

आर्यसमाज कोई नया संगठन नहीं है। नाम नया कह सकते हैं, परन्तु यह वही कार्य करता है जो प्राचीन भारत में महान वेदों के ज्ञानी तथा ईश्वर का साक्षात्कार करे हुए ऋषि, मुनि व विद्वान् किया करते थे। आर्यसमाज व इसके संस्थापक ऋषि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के सभी मन्त्रों, सिद्धान्तों व मान्यताओं की परीक्षा की थी और उन्हें ईश्वरप्रद तथा ज्ञान-विज्ञान के सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल पाया था। आज भी यही स्थिति है। वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने से मनुष्य को अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। ऐसा अन्य किसी मत व जीवन पद्धति से प्राप्त होना होता हुआ सम्भव प्रतीत नहीं होता। आर्यसमाज अपनी सभी मान्यताओं की परीक्षा व विवेचना करता है और सभी मान्यताओं के तर्क के आधार पर प्रतिष्ठित होने पर ही उन्हें स्वीकार कर उनका जन-जन में प्रचार करता है। आर्यसमाज का अपना एक मत-पुस्तक है जिसकी सब मान्यतायें वेदों से ली गई हैं और जो सृष्टि

को बने हुए 1.96 अरब वर्ष बाद आज भी सर्वथा प्रासंगिक एवं व्यवहारिक हैं। संसार में वेद सबसे पुराने व आद्य ग्रन्थ हैं। वेदों के ज्ञान के अनुकूल उनकी व्याख्याओं से युक्त ज्ञान ऋषियों के ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। वैदिक साहित्य के समान सत्य पर आधारित ज्ञान, मत-मतान्तर की पुस्तकों में उपलब्ध नहीं होता जिनमें सत्यज्ञान व वेद विरुद्ध कथन विद्यमान न हों। वेद सत्य व अहिंसा का पालन करने व कराने वाले आदर्श ग्रन्थ है। सभी मत-मतानतरों के ग्रन्थों का सर्वथा वेदानुकूल होना आवश्यक एवं अनिवार्य है। ऐसा होने पर ही संसार में सर्वत्र सुख व शान्ति स्थापित होकर मनुष्य परस्पर सौहार्द के साथ रहते हुए अभ्युदय व निःश्रेयस को प्राप्त हो सकते हैं। अतः आर्यसमाज द्वारा वेदों को अपनाना सारे संसार के लिये एक आदर्श है जिसे सब मतों के आचार्यों को जानकर व अपनाकर अपने-अपने मत को भी विश्व के मनुष्य समुदाय के हित के लिए लाभकारी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

ऋषि दयानन्द ने वेदों के सभी सिद्धान्तों व मान्यताओं का जन-जन में प्रचार करने के लिये आर्यभाषा हिन्दी में जिस प्रचार ग्रन्थ की रचना की है उसका नाम सत्यार्थप्रकाश है। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में अपने ग्रन्थ की रचना का प्रयोजन बताते हुए वह लिखते हैं, ''मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना

सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आप्तों (जो सब समय ईश्वर को प्राप्त होकर उसकी उपासना में रत रहते हैं) का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्य असत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयम् अपना हित अहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्या अर्थ का पत्याग करके सदा आनन्द में रहें।''

ऋषि दयानन्द ने उपर्युक्त पंक्तियों में जो लिखा है व अकाट्य सत्य व व्यावहारिक ज्ञान है। सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करने पर सत्यार्थप्रकाश सहित ऋषि दयानन्द के सभी ग्रन्थ विद्या के ग्रन्थ सिद्ध होते हैं जो अज्ञान व अन्धविश्वासों से सर्वथा रहित है। सत्यार्थप्रकाश में सभी मत-मतान्तरों के साथ निष्पक्षता व न्याय का अनुसरण करते हुए सबकी अविद्यायुक्त बातों का प्रकाश किया है जिनसे सामाजिक उन्नति में बाधा उत्पन्न होती है। अत: देश व समाज में सुख, शान्ति व कल्याण के विस्तार के लिये मत-मतान्तरों की सभी मान्यताओं की परीक्षा व समीक्षा की आवश्यकता है और उन्हें सत्य पर स्थिर व स्थित किया जाना भी समय की आवश्यकता है। यही कार्य ऋषि दयानन्द ने अपने समय में आरम्भ किया था और यही कार्य सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल तक हमारे समस्त ऋषि-मुनि, विद्वान् व आप्तपुरुष किया करते थे। जब तक यह कार्य किया जाता रहा भारत विश्व में चक्रवर्ती राज्य ऐश्वर्य को प्राप्त था और जब से वेदों से पृथक व दूर हुआ है, तभी से देश व समाज में अशान्ति, दु:ख, पराधीनता, अन्धविश्वास आदि वृद्धि को प्राप्त हुए और हमें अपमानित होना पड़ा है।

आर्यसमाज वेद, वैदिक साहित्य और सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के आधार पर मनुष्य का निर्माण करता है। वेद उच्च चारित्रिक मापदण्डों के पोषक हैं जिसका प्रचार व पोषण आर्यसमाज करता है। आर्यसमाज अपने सभी सदस्यों व अन्यों को भी ईश्वर व आत्मा विषयक सत्य ज्ञान उपलब्ध कराता है। ईश्वर व आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर सभी मनुष्य ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना व भक्ति में प्रवृत्त होते हैं। इससे अविद्या दूर होती है तथा मनुष्य को ईश्वर की कृपा, सहाय व आश्रय प्राप्त होता है। मनुष्य के दुर्गुण, दुर्व्यसन व दु:ख दूर हो जाते हैं। आत्मा की उन्नति होती है। ईश्वर से आत्मबल व सत्प्रेरणायें प्राप्त होती हैं। दान व परोपकार की प्रवृत्ति वृद्धि को प्राप्त होती है। मनुष्य असत्य व अज्ञान से दूर होता है तथा स्वाध्याय, सत्संग व चिन्तन-मनन-ध्यान से अपने ज्ञान को बढ़ाता व उसे प्रवचन व प्रचार द्वारा पुष्ट करता है। उपासना, अग्निहोत्र-यज्ञ, वेदाध्ययन सहित वैदिक साहित्य के अध्ययन तथा समाजोत्थान के कार्यों से उसका यश व गौरव बढ़ता है। वह श्रेष्ठ चरित्रवान् बनता है। '**मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत्सर्वभूतेषु य: पश्यति स: पण्डित:॥**' (नीतिसार) अर्थात् दूसरी सभी स्त्रियां माता के समान तथा दूसरों का धन मिट्टी के समान है। सभी प्राणी अपनी आत्मा के समान हैं। इस नीतिसार के वचनों का वैदिक धर्मी पालन करते हैं। वैदिक धर्मी पुरुषार्थी बनता है। देश भक्ति से सम्पन्न होता है। देश के लिये बलिदान की भावनाओं से युक्त होकर समाज में एक आदर्श उपस्थित करता है। स्वदेशी संस्कृति, परम्पराओं व धार्मिक मान्यतायें, जो सत्य पर आधारित हैं, उनके प्रति समर्पित होता है। वह विदेशी अपसंस्कृति तथा वहां से मिलने वाले प्रलोभनों का शिकार नहीं होता। वह अपनी संस्कृति को विदेशियों द्वारा प्रवर्तित मत व परम्पराओं को अच्छा न मानकर अपने महान् पूर्वजों वेद व ऋषि-मुनियों की परम्पराओं को मानता है व सत्य की दृष्टि से आवाश्यक होने पर उसी में सुधार करता है।

आर्यसमाज द्वारा स्वदेशी पर्वों व महापुरुषों की जयन्तियों को मनाने की परम्परा को पुष्ट व प्रचारित किया जाता है। शिक्षा व ज्ञान का प्रचार तथा अविद्या व अन्धविश्वासों का खण्डन किया जाता है। समाज में विद्यमान अवैदिक व अनुचित परम्पराओं का आर्यसमाज विरोध व सुधार करता है। ऐसा करने से ही एक शुद्ध ज्ञानवान तथा शुद्ध कर्मयोगी व पुरुषार्थी मनुष्य का निर्माण होता है। इस कार्य को आर्यसमाज ने अपने 148 वर्षों के इतिहास में बहुत उत्तमता से किया है। देश में वेद व सद्धर्म विरोधी शक्तियों के सहयोग न करने सहित धर्मान्तरण जैसी प्रवृत्तियों को गुप्त रूप से प्रवृत्त करने तथा अपने-अपने अपने मत की संख्या बढ़ाकर देश का सांस्कृतिक स्वरूप बिगाड़ने के प्रयत्न होते देखे जाते हैं। आर्यसमाज इस स्थिति से अपने जन्मकाल से ही परिचित व सतर्क है। उसे अपने बन्धुओं से सहयोग की

शेष पृष्ठ 16 पर....

क्या महाभारत में मन्त्र हैं?

❑ राजेश आर्य, गांव आट्टा, जिला पानीपत मो० 9991291318

गतांक से आगे....

प्रिय पाठकवृन्द! जब मैं डॉ० देवव्रत आचार्य जी के पास गुरुकुल कुरुक्षेत्र में अध्यापन कर रहा था, तो आचार्य श्री ज्ञानेश्वर जी ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ परीक्षण शिविर में बोलते हुए कहा था कि हमारे देश में साईंस पहलेभी थी, तभी तो संजय हस्तिनापुर में बैठा हुआ ही कुरुक्षेत्र-युद्ध का सारा हाल राजा धृतराष्ट्र को सुना रहा था। बाद में मैं आचार्य जी से मिला और नम्रनिवेदन किया कि आचार्य जी, पहले भी साईंस तो थी, पर संजय तो कुरुक्षेत्र आता था और यहाँ युद्ध की घटनाओं को इकट्ठा करके कई दिन बाद हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र को सुनाता था। यह सुनकर आचार्य जी हैरान हो गए और बोले-आपने कहाँ पढ़ा है? मैंने कहा- आचार्य जी, गीताप्रेस, गोरखपुर की महाभारत में।

आचार्य जी ने पूछा-फिर वह दिव्य दृष्टि क्या थी? मैंने कहा-आचार्य जी, मेरे विचार से महर्षि व्यास द्वारा प्रदत्त दिव्य दृष्टि आधुनिक दूरबीन के समान कोई यन्त्र रहा होगा, जिससे युद्ध भूमि में किसी ऊँचे स्थान पर खड़ा होकर इच्छित योद्धा के युद्ध का हाल जाना जाता होगा और उसे लिख लिया जाता होगा अथवा स्मरण रखा जाता होगा, जो बाद में हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र को सुनाया जाता होगा अथवा दिव्य दृष्टि कोई मानसिक शक्ति भी रही हो, जिसके बल पर युद्ध का विवरण जाना जाता हो, पर यदि महाभारत को प्रमाण मानें, तो संजय कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में जाता था और उसका वर्णन भूतकाल में करता है। जैसे-

भीष्मपर्व के 13वें अध्याय के शीर्षक में लिखा है- ''संजय का युद्धभूमि से लौटकर धृतराष्ट्र को भीष्म की मृत्यु का समाचार सुनाना।''

अथ गावल्गणिर्विद्वान् संयुगादेत्य भारत।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित्॥
ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः।
आचष्ट निहतं भीष्मं धृतराष्ट्राय ध्यायते॥
संजयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ।
हतोभीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः॥ (13-1,2,3)

वैशम्पायन कहते हैं-भरतनन्दन (जनमेजय)! तदनन्तर एक दिन भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञाता एवं सब घटनाओं को प्रत्यक्ष देखने वाले गवल्गण पुत्र विद्वान् संजय ने युद्धभूमि से लौटकर सहसा चिन्तामग्न धृतराष्ट्र के पास जा अत्यन्त दुःखी होकर भीष्म के मारे जाने का समाचार सुनाया। संजय बोला-''महाराज धृतराष्ट्र! मैं संजय आपको नमस्कार करता हूँ। भरतवंशियों के पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म मारे गये।''

मैंने कहा-आचार्य जी, यहाँ संजय ने आते ही सबसे पहले पितामह भीष्म के मरने (गिरने) की बात बताई है, जो युद्ध आरम्भ होने के दसवें दिन की घटना है। इससे पहले की घटनाएँ बाद में धृतराष्ट्र के पूछने पर ही बताई। 14 से 24वें अध्याय तक युद्धसम्बन्धी तैयारी का वर्णन किया और 25वें अध्याय से 42वें अध्याय तक गीता उपदेश, 43वें अध्याय में युधिष्ठिर द्वारा युद्ध की अनुमति लेना और 44वें अध्याय से पहले दिन के युद्ध का वर्णन शुद्ध होता है।

आचार्य जी बोले-''आपने बहुत गम्भीरता से पढ़ा है, इस पर लेख लिखो।'' तब मैंने 'शान्तिधर्मी' में लेख दिया था (मार्च, 2006)। अब आगे चलते हैं-

द्रोणपर्व के प्रथम अध्याय से यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि संजय कुरुक्षेत्र में कई दिन की घटनाओं का संग्रह करके हस्तिनापुर जाता था। पहले वह दसवें दिन के बाद आया था और घटना बताकर कुरुक्षेत्र चला गया। द्रोण तथा कर्ण की मृत्यु के बाद वह पुनः हस्तिनापुर गया। देखिये-

शिविरात् संजयं प्राप्तं निशि नागाह्वयंपुरम्।
आम्बिकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत्॥ (द्रोण० 1.7)

''महाराज! रात्रि के समय कुरुक्षेत्र के शिविर से हस्तिनापुर में आये संजय से अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र ने वहाँ का समाचार पूछा।''

शल्यपर्व के प्रथम अध्याय के अनुसार शल्य और दुर्योधन के वध के बाद संजय कुरुक्षेत्र से पुनः हस्तिनापुर आ गया। देखिए-

ततः पूर्वाह्नसमये शिबिरादेत्य संजयः।
प्रविवेश पुरीं दीनो दुःखशोकसमन्वितः॥ (शल्य० 1.14)
ददर्श नृपतिश्रेष्ठं प्रज्ञाचक्षुमीश्वरम्॥ (1.22)

''तत्पश्चात् पूर्वाह्नकाल में दुःख और शोक में डूबे हुए संजय ने शिविर (कुरुक्षेत्र) से आकर दीनभाव से हस्तिनापुर में प्रवेश किया। उसने राजभवन में प्रवेश करके अपने स्वामी प्रज्ञाचक्षु नृपश्रेष्ठ धृतराष्ट्र का दर्शन किया।''

ऐसा नहीं है कि संजय केवल समाचार ही पहुँचाता हो, शल्यपर्व का 25वाँ अध्याय बताता है कि संजय ने स्वयं भी युद्ध में भाग लिया था। संजय धृतराष्ट्र से कहता है–

''राजन्! मैं जीवन का मोह छोड़कर अन्य चार महारथियों को साथ ले हाथी और घोड़े दो अंगों वाली सेना से मिलकर धृष्टद्युम्न की सेना के साथ हम लोगों का बड़ा भारी युद्ध हुआ, परन्तु उन्होंने हम सबको परास्त कर दिया। तब हम वहाँ से भाग चले। इतने में ही महारथी सात्यकि को अपने पास आते देखा। वीर सात्यकि ने रणभूमि में चार सौ रथियों के साथ मुझ पर आक्रमण किया। थके हुए वाहनों वाले धृष्टद्युम्न से मैं किसी प्रकार छूटा, तो सात्यकि की सेना में आ फँसा, जैसे कोई पापी नरक में गिर गया हो। वहाँ दो घड़ी तक बड़ा भयंकर एवं घोर युद्ध हुआ। महाबाहु सात्यकि ने मेरी सारी युद्ध सामग्री नष्ट कर दी और जब मैं मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, तब मुझे जीवित ही पकड़ लिया।'' (शल्य० 25.52,54,55,56,57)

उस समय मुझे कैद में पड़ा हुआ देखकर धृष्टद्युम्न ने हँसते हुए सात्यकि से कहा–''इसे कैद करके क्या करना है? इसके जीवित रहने से अपना कोई लाभ नहीं है।'' धृष्टद्युम्न की बात सुनकर शिनि पौत्र महारथी सात्यकि तीखी तलवार उठाकर उसी क्षण मुझे मारने के लिए उद्यत हो गये। उस समय महाज्ञानी श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास जी सहसा आकर बोले–''संजय को जीवित छोड़ दो। ये किसी भी प्रकार वध के योग्य नहीं हैं।'' हाथ जोड़े हुए सात्यकि ने व्यास की जी वह बात सुनकर मुझे बन्धन से मुक्त करके कहा–''संजय तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, अपना अभीष्ट साधन करो। उनके इस प्रकार आज्ञा देने पर मैंने कवच उतार दिया और हथियार रहित हो रक्त से भीगा हुआ मैं सायंकाल नगर की ओर प्रस्थित हुआ।'' (शल्य० 29.37,41)।

वहाँ से छूटने पर संजय दुर्योधन से मिला। कुछ देर बात करके वह उसका सन्देश लेकर चला और मार्ग में कृप, अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा को उसने दुर्योधन के विषय में बताया। दुर्योधन के युद्धभूमि में गिर जाने पर वह पुनः दुर्योधन से मिला। शल्यपर्व के 64वें अध्याय में लिखा है–

केशान् नियम्य यत्नेन निःश्वसन्नुरगो यथा।
संरम्भाश्रु परीताभ्यां नेत्राभ्यामभिवीक्ष्य माम्॥
(शल्य० 64.5)

संजय कहता है–''बड़े यत्न से अपने बालों को बाँधकर सर्प के समान फुफकारते हुए उस (दुर्योधन) ने रोष और आँसुओं से भरे हुए नेत्रों से मेरी ओर देखा।'' इससे आगे श्लोक संख्या 7 से 39 तक संजय ने दुर्योधन के साथ हुई अपनी बातचीत का वर्णन किया है। इससे सिद्ध होता है कि संजय हस्तिनापुर में बैठा हुआ ही कुरुक्षेत्र के युद्ध को प्रत्यक्ष नहीं देखता था, भले ही उसके पास महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रदत्त दिव्यदृष्टि (दूरबीन या योग की विभूति) रही हो, पर यह वर्णन तो दिव्यदृष्टि को काल्पनिक ही सिद्ध कर रहा है। अतः भीष्मपर्व का वह श्लोकांश (13-1) भी प्रक्षिप्त है, जिसमें संजय को भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञाता कहा है।

महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय-2 का यह श्लोक भी विचारणीय है कि संजय को दिव्यदृष्टि देने के बाद महर्षि वेदव्यास ने कहा–''**गावल्गणिरयं जीवन् युद्धादस्माद् विमोक्ष्यते**'' (गवल्गण का पुत्र यह संजय इस युद्ध से जीवित बच जाएगा) यदि संजय को दिव्यदृष्टि हस्तिनापुर में रहने के लिए दी गई थी, फिर युद्ध से जीवित बचने की बात क्यों कही? जब महर्षि वेदव्यास ने ही संजय को सात्यकि से बचवाया था, तो दिव्यदृष्टि का प्रभाव कहाँ रहा?

क्रमशः अगले अंक में....

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक समाचार-पत्र की सदस्यता ग्रहण कर तथा धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों में 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा' को सहयोग राशि भेजकर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में सहभागी बनिये। सम्पर्क–मो० 08901387993

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा रचित अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की भूमिकाओं में सुधारवादी वैचारिक क्रान्ति का मूल उद्देश्य

❑ पण्डित उम्मेद सिंह विशारद, वैदिक प्रचारक

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ग्रन्थ के अन्त में लिखते हैं सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ और जो मत मतान्तर के परस्पर झगड़े हैं, उनको मैं प्रसन्न नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिया है। इस बात को काट, सब सत्य का प्रचार कर सबको एक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़प्रासियुक्त करा के सबसे सबको सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा से सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जाये और सब लोग सहज से धमार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, मेरा मुख्य प्रयोजन है।

सत्यार्थप्रकाश की भूमिका से–मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रयोजन करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त रहता है, इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर देना, पश्चात् मनुष्य लोग स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्य सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य है उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनको त्याग कर परस्पर प्रासि से वर्ते वर्ताएं तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेक विधि दु:ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं।

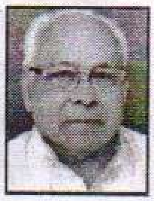

सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है।

सत्यार्थप्रकाश के अनुभूमिका नं० 1 में से उद्देश्य–यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई मत न था, क्योंकि वेदोक्त सभी बातें विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने के कारण महाभारत युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से अविद्या, अन्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया वैसा मत चलाया।

जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छुटेगा तब तक अन्योन्य आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वान् जन ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर सत्य असत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना करना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है।

सत्यार्थप्रकाश के अनुभूमिका नं० 2 में से उद्देश्य–जब तक वादी-प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद व लेखन किया जाये तब तक सत्य असत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्य असत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महान्धकार में पड़कर बहुत दु:ख उठाना पड़ता है। इसलिए सत्य की जय और असत्य के क्षय के अर्थ सुहृदयता से वाद व लेख करना हम मनुष्य जाति का मुख्य काम है और यह बौद्ध-जैन मत का विषय बिना इनके अन्य मत वालों को अपूर्व लाभ और बोध कराने वाला होगा।

भला यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मत का पुस्तक आप ही देखना और दूसरे को न दिखलाना, इसी से विदित होता है कि इन ग्रन्थों को बनाने वालों को प्रथम ही शंका थी कि इन ग्रन्थों में असम्भव बातें हैं जो दूसरे मत वाले देखेंगे तो खण्डन करेंगे और हमारे मत वाले दूसरों के ग्रन्थ देखेंगे तो इस मत में प्रधान रहेगी।

सत्यार्थप्रकाश के अनुभूमिका नं० 3 में से उद्देश्य–यह जो बाइबिल का मत है वह केवल ईसाइयों का है सो

नहीं, किन्तु इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं। इनका जो विषय यहां लिखा है सो केवल बाइबिल में से कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं और इस पुस्तक को अपने धर्म का मूल कारण समझते हैं। यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के हवास के लिए लिखा है न कि किसी को दु:ख देने व हानि अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ है। इसका अभिप्राय: उत्तर लेख में सब कोई समझ लेंगे कि यह पुस्तक कैसा है और इसका मत भी कैसा है।

मनुष्य की आत्मा यथायोग्य सत्य असत्य का निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है। जो जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं, वे तो सबके एक से हैं। झगड़ा झूठे विषयों में होता है।

सत्यार्थप्रकाश के अनुभूमिका नं० 4 में से 1.—जो यह चैदहवां सम्मुलास मुसलमानों के मत विषय में लिखा है, सो केबल कुरान के अभिप्राय से, अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं। न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने व माने किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता।

आज संसार को आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर चलने की अति आवश्यकता है—महर्षि दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थप्रकाश में कहते हैं कि जो उन्नति करना चाहो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त देश का उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् उन्नति देवें तो बहुत अच्छी बात है, क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है एक का नहीं।

आत्म निवेदन—आर्यसमाज संसार मे विशाल संगठन है। आज हम महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जयन्ती सम्पूर्ण विश्व में मना रहे हैं। आज हमें अपने में सुधार लाने की अति आवश्यकता है। आर्यसमाज का नेतृत्व एक हो और शसक्त हो, जो आर्यसमाजों में सिद्धान्तों का पालन दृढ़ता से कराये प्रत्येक आर्यसमाज का पदाधिकारी, सिद्धान्तों का पालन व स्वध्यायशील, निर्लोभी व विद्वान् होना चाहिए। चाहे कोई कितना बड़ा धनवान व नेता हो, यदि सिद्धान्त हीं है तो उसको पदाधिकारी न बनाया जाएं। आज समाजों में विवाद का कारण यही है कि सिद्धान्तहीन व्यक्ति को पद दिया जाता है।

सार्वदेशिक सभा को एक नियमावली पदाधिकारियों के लिए भी बनानी चाहिए जो उन नियमों पर खरा उतरे उसे ही पद दिये जाएं। जब प्रत्येक आर्यसमाजों के निर्लोभी, सिद्धान्तों का पालक व स्वध्यायशील वैदिक धर्म का पालक, पुरुषार्थी होगा तभी दिनोदिन आर्यसमाज आगे बढ़ता रहेगा और संसार का कल्याण कर सकेगा।

संम्पर्क-गढ़ निवास मोहकमपुर, देहरादून (उत्तराखण्ड)
मो० 9411512019, 9557641800

जवानी को याद करेंगे

एक दिन हम बूढ़े हो जायेंगे, हाथ-पैर और अंग जुड़ जायेंगे।
दवाइयों पर धन बरबाद करेंगे, दु:ख में हाय-हाय करेंगे।
जवानी को याद करेंगे, जवानी को याद करेंगे।
चलना-फिरना भी तब कम होगा, गिर पड़ने का सदा डर होगा।
छड़ी ले हाथ चला करेंगे, जवानी को याद करेंगे॥
मुंह में तब कोई दांत न होगा, मनचाहा खाना भी तब मुश्किल होगा।
दलिया-खिचड़ी संग निर्वाह करेंगे, जवानी को याद करेंगे॥
आँखों से भी दिखना कम होगा, एक ठोर ही तब टिकना होगा।
सहारे के लिए तरसा करेंगे, जवानी को याद करेंगे॥
कानों से भी सुनना तब कम होगा, गुमशुम बनके पड़ा रहना होगा।
हँस-हँसकर बतियाने को याद करेंगे, जवानी को याद करेंगे॥
घर में बनते पकवानों की खुशबू आयेगी, नहीं खाने को मन में रह जाएगी।
क्या बना है बच्चों से पूछा करेंगे, जवानी को याद करेंगे॥
लाचारी बेकदरी में जीना होगा, सब कुछ तज के जग से जाना होगा।
पछतावे में ही ईश्वर को याद करेंगे, जवानी को याद करेंगे॥
बुढ़ापे में भी खुश रह सकते हैं, ईश्वर की तपस्या समझ इसे सह सकते हैं।
और गये पर हम जीवित हैं, ईश्वर का गुणगान करेंगे।
जवानी को याद करेंगे, जवानी को याद करेंगे॥

—देशराज आर्य, सेवानिवृत प्रधानाचार्य, 725,
सै०-4, रेवाड़ी, मो० 9416337609

22 राज्यों के राष्ट्रीय खिलाड़ियों ने अपराधमुक्त, बारोजगार समृद्ध भारत के लिए किया देश में गुरुकुल शिक्षा पद्धति लागू करने का समर्थन–

वैदिक विश्व सभा एवं राष्ट्र निर्माण परिषद् ने 22 राज्यों से महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक में आए खिलाड़ी छात्रों तथा उनके साथ आए प्रशिक्षकों, अभिभावकों के मध्य जाकर सर्वेक्षण किया–जिसमें अपराध, नशा, जाति-सम्प्रदायरहित, रोजगारयुक्त समृद्ध भारत के लिए, सबके लिए समान, रुचि अनुसार, निःशुल्क, अनिवार्य गुरुकुल शिक्षा प्रणाली लागू करने का समर्थन 95 प्रतिशत प्रतिभागियों ने किया। तमिलनाडु से पधारी अभिभावक श्रीमती निकिता ने कहा कि गुरुकुल में गांव नगर के दूषित वातावरण से दूर एकान्त में योग्य चरित्रनिष्ठ शिक्षकों की देखरेख में बालक का सर्वांगीण विकास हो सकता है।

आंध्रप्रदेश से पधारे नरीमन पड्डुकलम् ने कहा कि–गुरुकुल में सभी विषयों व तकनीक की शिक्षा होनी चाहिए।गुरुकुल प्रणाली में छात्र अपराधों, नशों से तो स्वतः ही बच जाता है। शिमला से आए अजय कुमार ने गुरुकुल पद्धति का उत्साह पूर्वक समर्थन किया। गुजरात से आए फरीदून मिर्जा ने बताया कि कभी ईरान पर मुगलों ने हमला किया तब हमारे पूर्वज भारत आ गए थे। ईरानी कहते हैं कि हमारा मूल भारत ही है। हमारा परिवार गुजरात के सूरत बस गया। मैं बहुत ही खुश होऊँगा यदि भारत में फिर से गुरुकुल पद्धति लागू होती है। महावीर धीर शास्त्री ने प्रतिभागियों को बताया कि देश के 600 जिलों में गुरुकुल क्रान्ति संगठन की ईकाइयां स्थापित की जा रही हैं। पुराने गुरुकुलों को सर्वांगीण बनाकर नए गुरुकुलों को भी स्थापित करने की योजना पर कार्य हो रहा है। शिक्षक ही परीक्षा लेंगे और संस्था प्रमाणपत्र देगी। हस्तशिल्प सहित सभी विषय गुरुकुलों में होंगे। प्रवेश और सेवा के परीक्षण बंद होंगे। संस्था से शिक्षक ही कार्य नियुक्ति करेंगे। विवाह आयु उपरान्त माता पिता, शिक्षक, सम्बन्धीगण तथा युवक युवतियों की सहमति से प्रतिवर्ष संस्था से ही सामूहिक रूप से विवाह करके नव दम्पतियों को सुरीले वाद्यों की धुन पर विशिष्ट निश्चित परिधान में घर भेजा जाएगा। जाति का कोई कालम कहीं नहीं होगा।

–महावीर 'धीर' शास्त्री, प्रेमनगर, रोहतक-9466565162

आर्यसमाज शुद्ध ज्ञान व... पृष्ठ 11 का शेष....

आवश्यकता है तभी आर्यसमाज शुद्ध मनुष्य बनाने के अपने मिशन में सफल हो सकता है। यही देश व विश्व में सुख व शान्ति स्थापित करने की सबसे प्रभावशाली योजना है। मानव के जीवन व चरित्र का सुधार किया जाये और उसे शुद्ध ज्ञान व परोपकार के कार्यों को करने में प्रवृत्त किया जाये। यह कार्य वेद व आर्यसमाज को अपनाने पर ही हो सकता है। इस पर देश के बुद्धिजीवियों व मनीषियों को विचार करना चाहिये। आर्यसमाज को भी अपने भीतर आयी निष्क्रियता व संगठन की दुर्बलता पर विचार कर उसे ओजस्वी व तेजस्वी बनाने पर विचार करना चाहिये व कमियों व खामियों को दूर करना चाहिये। वेद व आर्यसमाज देश व विश्व को सुखी व सम्पन्न बनाने सहित सबको न्याय प्रदान कर उन्नत बनाने की एक निर्दोष व सम्पूर्ण व्यवस्था है। सबको आर्यसमाज को अपनाना चाहिये व आर्यसमाज से सहयोग करना चाहिये।

बुजुर्गों के अधिकार

बुजुर्ग को बेसहारा नहीं छोड़ सकते, बुनियादी जरूरतें पूरी करनी होंगी

देश के बुजुर्गों को कई बार तमाम तरह की दिक्कतों से जूझना पड़ता है। कभी अपनी सन्तान ही बुढ़ापे में बेसहारा छोड़ देती है। ऐसे में बुजुर्गों की रक्षा के लिए मेंटिनेंस एंड वेलफेयर ऑफ पैरेंट्स एंड सीनियर सिटीजंस एक्ट-2007 लागू किया गया है। इस कानून के जरिए बच्चों/रिश्तेदारों के लिए माता-पिता/वरिष्ठ नागरिकों की देखभाल करना, उनकी सेहत, इलाज, रहने-खाने जैसी बुनियादी जरूरतों की व्यवस्था करना अनिवार्य किया गया है। गुजारा भत्ता पाने का भी हक है। कानून के मुताबिक बेटे-बेटी के साथ-साथ बालिग पोते-पोतियों की भी ये जिम्मेदारी है। भले ही ये बेटे-बेटी बुजुर्ग की जैविक सन्तान हों या फिर सौतेली या फिर गोद ली हुई, उन सब पर ये कानून लागू होता है।

सम्पत्ति ट्रांसफर करने के बाद भी प्रॉपर्टी पर पूरा हक–कोई बुजुर्ग अपनी सम्पत्ति बच्चों या रिश्तेदार के नाम ट्रांसफर कर चुका हो और वह अब उसकी देखभाल नहीं कर रहे तो प्रॉपर्टी का ट्रांसफर भी रद्द हो सकता है। यानी सम्पत्ति से उसी बुजुर्ग के नाम हो जाएगी, जिसने उसे ट्रांसफर किया था। इसके बाद वह चाहे तो बेटे-बेटियों को संपत्ति से बेदखल कर सकता है। (साभार-दैनिक भास्कर, 7.10.2023)

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के प्रधान यशस्वी प्रधान सेठ श्री राधाकृष्ण आर्य का सम्मान करते हुए डॉ. स्वामी विपुल विद्या वाचस्पति, प्रधान सार्वदेशिक वैदिक विद्वत् परिषद् साथ में अनेक गणमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे।

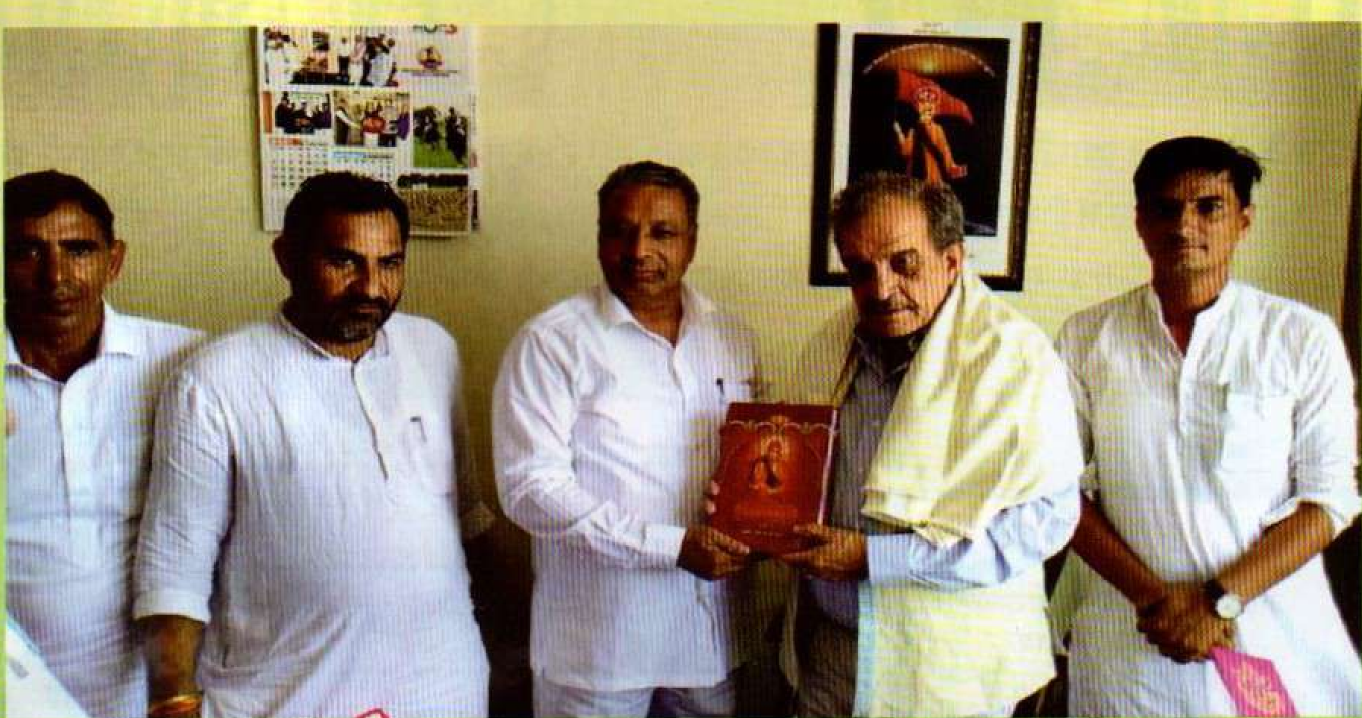

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के प्रधान सेठ श्री राधाकृष्ण आर्य जी से मिलने आये भारतीय जनता पार्टी के केन्द्रीय मंत्री चौ० वीरेन्द्र सिंह जी, अन्तरंग सदस्य श्री राममेहर आर्य एवं अन्य गणमान्य आर्य सदस्यगण उपस्थित थे।

गुजरात के राज्यपाल महामहिम आचार्य श्री देवव्रत जी आर्य महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200वीं जन्म जयन्ती पर विचार विमर्श करते हुए साथ में हैं आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा दयानन्दमठ रोहतक के यशस्वी प्रधान सेठ श्री राधाकृष्ण आर्य, आर्य बाल भारती पब्लिक स्कूल पानीपत के प्रधान सरपंच श्री रणदीप आर्य आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

श्री ....

पता ....

....

प्रेषक :
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
दयानन्द मठ, रोहतक
हरियाणा, 124001

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि.) के स्वामित्व में मुद्रक, प्रकाशक उमेद शर्मा ने दुर्गेश्वरी प्रिंटर्स के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक से मुद्रित एवं कार्यालय, सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ रोहतक-124001 से प्रकाशित।

- सम्पादक उमेद शर्मा